

प्र० भा० दि० जैन शास्त्र परिषद् की ओर से

शामोकार मंत्र

और

आत्म विकास की सीढ़ियां

लेखक

श्री प० सरनाराम जैन
देहरादून

प्रकाशक —

बाबूलाल जैन जभादार
संयुक्त मंत्री प्र० भा० दि० जैन शास्त्र परिषद्
घड़ौत (मेरठ)

प्रथम बार
१९००]

मार्च १९६८ ई०

[पोस्टेज खर्च
५ पैसे

अपनी बात—

अ० भा० दि० जैन शास्त्र परिपद् का ३७ वें पुष्प आपकी सेवा में प्रस्तुत करते हुए परम हृदय का अनुभव कर रहे हैं। 'एमोकार मंत्र' का अर्थ सर्व साधारण भली भाँति जान सके इसकी मांग बराबर मुझ से की जाती थी, वसी दृष्टि को ध्यान में रखकर यह पुस्तक तैयार की गई है। इससे पाठक कितना लाभ उठाते हैं यह तो मना ही बतायेगा। पर, मैं हृदयपूर्वक अभिप्रेत जनिता हूँ कि जैन गिद् संस्थाओं के छात्रों को अधिक लाभ इस पुस्तक से होगा।

शास्त्र विकास किस प्रकार होता है और यह कौन-० सी मीट्रिङ हैं जिन से यह आत्मा परमात्मा बनकर अर्न्त सुख का स्वामी होता है वह इस पुस्तक में पाठकों को बराबर मिलेगा। यदि शास्त्र वि से व विवेक से इस का अध्ययन किया गया तो सहज ही हम अपने भूल इसके स्वाध्याय से मिटा सकत हैं।

मैं, अपने परम ग्नेही विद्वान श्री प० सरनाराम जी जैन से आभारी हूँ जिन्होंने यह पुस्तक तैयार करके दी है। दि० जैन शास्त्र परिपद् अपने प्रकाशनों में अब नया मोड़ लेने जा रहे हैं। उससे लिये विचार विमश हो रहा है। उसके निर्णय के अनुसार उच्च कोटि के प्रथम समाज की सेवा में पहुँच सकेंगे। जिससे भावी पीढ़ी अपने जीवन को सम्भाल सके और वर्तमान पीढ़ी के सामन जो ढद है यह उसे भली भाँति समझकर सुधार सके।

आशा है दानी बंधु शास्त्र परिपद् को दान देकर प्रकाशन के कार्य को आगे बढ़ावगे। । ।

बडौत (मेरठ)

दिनांक १५-३-६८ इ०

बाबूलाल जन् जमादार

सं० मंत्री अ० भा० दि० जैन शास्त्र परिपद्

लामोहार मन्त्र

और

प्रात्मा के विकास की सीढिया

ऐसा कुछ वस्तु का स्वभाव है कि जीव का स्वतन्त्र अनादि से निगोद म पास है । कुछ जीव तो अनन्त काल से वहाँ ही हैं और बहुत काल तक वहाँ ही पड़े रहेंगे । इनके दुभाग्य की क्या चर्चा कर । ये तो हैं संसार दुख भोगन के लिये । उनको आत्म विकास का कोई अवसर नहीं । जन्म से छ महीन और आठ समय में स्वतन्त्र काल व परिवर्तन के नियमानुसार ६०० जीव बाहर निकलते हैं जिनकी व्यवहार संज्ञा बन जाती है । उनमें भी फिर बहुता का समय तो पचेन्द्रिय, विकनेन्द्रिय तथा पचेन्द्रिय असंज्ञो पर्यायो में बीतता है । यहाँ तक तो भाग्य की मुख्यता है, और जीव मन की हीनता के कारण घम संवन्धी कोई आत्म कर्याण नहीं कर सकता । फिर कोई जीव यदि मन वाला हुआ और सासारिक विषय भोग-कर्म चेतना और कम फल चेतना म ही जीवन खो दिया तो संज्ञापना पाया या नहीं पाया कोई लाभ नहीं हुआ । उनमें कोई चिरला जीव जो भव्य पचेन्द्रिय, पर्याप्त होता है तथा

कालादि लब्धियों को प्राप्त होता है वह महाभाग्यशाली, प्रकृतियों के उपशम क्षय अथवा क्षयोपशम से सम्बन्ध को प्राप्त करता है । यह आत्मा के विकास की पहली सीढ़ी है । इससे उसका प्राय दुर्गतियों का भ्रमण मिट जाता है, और जीव स्वरूप में सचेत होता है । फिर उन असंगत जीवों में से कोई एक विरला जीव श्रावक का घम ग्रहण कर पाचवे गुणस्थान की विरताविरत रत्ना को ग्रहण करता है । इसको भी पारकर कोई महाभाग्यशाली मुनघम को अंगीकार करता है । जहाँ उसका छठ सातव गुणस्थान में परिणामन होता रहता है और इसकी साबु सज्ञा हो जाती है । और इसका दर्जा पंचपरमणी में रुम्भिल्लित हो जाता है । महापुष्प सद्गुरु, या सत् जैसे पवित्र गुरु का पार धन जाता है । ये आत्मविकास की एक उत्तम पहली उत्तम दशा है । जिस को सञ्जन पुरुष "शमो लोण सव्यसा"णी" कहें कर नित्य नमस्कार किया करते हैं ।

• जैन धर्म में एक शमोकार मन्त्र है जो अपराजित सर्वोत्तम महामन्त्र है । भगवती आराधना के संस्कृत टीकाकार श्रीशार्ये दबने इसे गणघर कृत लिखा है, और यह भी लिखा है कि द्वादशांग का प्रारंभ इसी मन्त्र से होता है । अजैन को जैन बनाने के लिये इसी मन्त्र द्वारा पुद्धि की जाती है । जैन बालक को जैन धर्म की पढ़ाई प्रारंभ करने से पहले यही मन्त्र सिखाया जाता है । युवा लोग प्रतिदिन सामाधिक में इस मन्त्र की धाला पेटते हैं । पूजा मूर्तियों में प्रायश्चित्त में, यहा तक कि प्रत्येक शुभ क्रिया का प्रारंभ ही इसी मन्त्र से होता है । इसके सुनने मात्र से भूत्ता भी मर कर देव हो गया था । प्रौढ ज्ञानी जन नित्य इसके अर्थ पर (—वान्य पर या अभिषेय पर) ध्यान

में यह साधारण अवाधा में विचार किया करते हैं। क्या आपन भी कभी विचारा कि आखिर इसकी इतनी महत्ता क्या है ? इनका अर्थ क्या है ? इसका वाच्य क्या है ? आर्ये, आज यही बात हम आप को समझाना चाहते हैं।

इसकी इतनी महत्ता इस कारण है कि ये आत्म विकास क मूचक दर्शाएँ हैं। जो दशाएँ नियम से मुक्ति को देती हैं या मुक्तिरूप हैं। इनमें "एमो लोए सव्वसाण" यह आत्मा की पहली उन्नत दशा है, जिसका उतर सनेत किया। वहा आत्मामें क्या अलौकिकता आ जाता है अथवा यह आत्मा किस स्वरूप में परिणत होता है इसका सब प्रथम चित्रण श्री बुद्धिद आचार्य ने इन शब्दों में खीचा है -

‘एमो लोए सव्वसाण’ का वाच्य अर्थ

वापार विपमुक्का चउव्विहाराइणासयात्ता
णिग्गंधा णिम्मोद्दा साधू प्येरिसा होति ७५

— नियमसार

व्यापार से विमुक्त (समस्त व्यापार रहित) चार प्रकार की आराधनाओं में सदा रक्त, निषय और निर्माहणसे साधु होते हैं। इनके लिये नमस्कार हो। भावाथ इस गायार् म बताया है कि सबसे पहली आत्म विकास की गृही तो इस आत्मा में यह स्थान हो जाती है कि वह समस्त सासारिक कार्यों से मुक्त हो जाता है। अर्थात् अशुभ भाव का लेश उही रहता अथवा आत्म अकल्याण जैसी यहा कोई बात नहीं है। इस पर फट यह प्रश्न होता है कि फिर आखिर इसका समय (जीवन) कैसे व्यतीत करने लिये उत्तर देते हैं कि यह

प्रकार की आराधनाओं में सदा रक्त रहता है अर्थात् इसका काय है दर्शन, नान चारित्र और तप आराधनाओं का आराध करना । उन्हें नित्य पालना, लगे हुए दोषों को प्रायश्चित्त द्वारा दूर करना और इस प्रकार वहा तक उसकी उन्नति करना जहा तक कि वे पूर्ण दशा को प्राप्त न हो जाय ।

फिर दूसरा इसका काम है सम्यग्ज्ञान की उपासना छद् द्रव्य, पंचात्मिकाय, ७ तत्त्व, ६ पदार्थ और व्यवहार निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप यथावत् पंचात्मिकाय आदि आगम के आधारानुसार जानना । फिर उसमें विशेषतया स्व पर का भेद जो उसने सम्यक्त्व प्राप्ति में किया था । उसका प्रमाण नय आदि द्वारा अधिक प्रौढ़ अभ्यास करना और करते ही रहना । इस आराधना का सेवन यद्यन्तज्ञान की उत्पत्ति तक निरंतर किया जाता है । जब छट गुण स्थान में आता है तो अत के आधार से इसका विचार करता है और सातव आदि से बाहरवें गुणस्थान तक आत्मज्ञान के रूप में इस आराधना की उपासना की जाती है ।

तेरहवें गुणस्थान में केवल ॥१॥ होने पर यह आराधना पूर्ण हो जाती है । फिर तीसरी चारित्र आराधना छठ सात वें गुणस्थानों में तो इसे इन्द्रियसंयम और प्राण संयम के रूप में साधता है । ५ महाशक्त ५ समिति, ३ गुणियों को पालता है और अशुभभाव प्रवृत्ति नष्ट नहीं करता है । चौबिसो घण्टे निर्दोष शुभ प्रवृत्ति करता है । यह प्रवृत्ति रत्नत्रय सहित होती है फिर अपनी आत्म शुद्धि का बल बढ़ाने के लिये आत्मस्थिरता का प्रयास करता है जो दशा आठवें से बारहव तक की है । तेरहवें गुणस्थान का यथाख्यात चारित्र (निश्चय चारित्र) प्राप्त होने पर यह आराधना भी प्राप्त हो जाती है और किसी

अपेक्षा चौदहवें गुरुस्थान तक चज़ती है ।

यह साधु ६ वाय और ६ आम्बन्तर इन १२ तर्पों की साधना करता है । इसकी साधना छठे से प्रारम्भ होकर बारहवें तक चलेगी । इस प्रकार ये मुनि क्या करता है ? कैम इनका जीवन व्यतीत होता है ? उसका उत्तर कुन्द कुन्द महाराज ने किम्बे सुन्दर शब्दों में दिया कि ये सदा चार प्रकार की आराधनाओं में रत रहता है । इस पर विसा को यदि यह शका हो कि क्या ये आराधनाएं एह्य के भी बन पाती ह । यह भी तो आत्मा है । तो आत्मे पद में उत्तर दत है कि नही । यह आत्मा तो जन्म ह ज्ञानी भी है पर हमकी साधना में परिग्रह ने ऐसा अटकाया हुआ है । परिग्रह के अगदर रक्षण, व्यय आदि में जो उसका उपयोग लगता है, इसमें इन आराधनाओं का साधन नहीं बनता । इनकी प्राप्ति के लिये परिग्रह का सवया त्याग करना पड़ता ह । और इतना त्याग करना पड़ता है कि शरीर का भी सर्वथा निष्परिग्रह करके दिग्म्बर मुद्रा धारण करनी पड़ती है । उसकी सूचना के लिये निमय पद दिया है । इस पर फिर भी कोई बहता है कि इन के शरीर परिग्रह तो रहता, हा है । संयम के साधन पछा कमएडल, ज्ञानक साधन पुस्तक आदि तो रहत ही है ? तो उत्तर देते है कि इनके अन्तरंग परिग्रह का भी त्याग होता है इसलिये वे इन पदार्थ के प्रत निर्मोह होत है । उपकरण परिग्रह नहीं है किन्तु मूर्च्छा परिग्रह ह । और वह मूर्च्छा इनके है गही । ऐसा निर्मोहा यह साधु हो जात है । आत्मविकास की इस प्रयत्न, सीढ़ी को जो प्राप्त कर लेता है उसको साधु कहते है । उसके लिये हमारा नमस्कार हो ।

इनके बाद इस पृथ्वीतल पर एक और महान् आत्मा आया जिसका नाम श्री नेमीचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती था । इन्होंने पंचम काल में श्रुतवेचनी जैसा काम किया है । सारे अध्यात्म और द्रव्यानुयोग को द्रव्यसंग्रह की १८ गाथा में बाधना इन्हीं का काम था । इन्होंने इसी साधु परमेष्ठी के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उपरोक्त आ० कुन्दकुन्द के भाव को निम्न शब्दों में गूथा है ।

ईसणणाणसमगा मगा मोक्षस्स जो ह्य चारिणं
साधयदि णिच्चसुद्ध साट् सा मुणी एमो तस्य

द्रव्यसंग्रह

जो चारित्रि सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान से पूर्ण [युक्त] होता है, जो चारित्रि मोक्षमाग स्वरूप होता है, जो चारित्रि सदा शुद्धा होता है ऐसे चारित्रि को जो साधता है वही मुनि साधु परमेष्ठी है । उसको महा नमस्कार हो ।

चारित्र्याराधना में ता चारों आराधनाओं का नियम से अर्तभाव रहता ही है कि तु और आराधनाओं में अन्ध का समावेश हो या न हो ऐसा भगवती आराधना में सयुक्तिक सिद्ध किया है । इसलिये आचार्य देव न चार आराधना न लिखकर केवल चारित्र्य आराधना को सिद्ध करने वाला लिखा । यह जैन धर्म की सामान्य या सच्चिन्म शैली है । यह आचार्य सूत्रकार थे और बहुत ही सच्चिन्म रचिवाले थे । इस पर कोई द्रव्यलिंगी मुनि की आराधना को चारित्र्य आराधना न समझ ले उसके लिये सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञान से युक्त कहा ।

श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने जो सब व्यापारों से मुक्त

निम्न तथा निर्मोह कहा था उसके स्थान पर इन्होंने नास्ति से सब दोषों की गहिरता को सिद्ध करने के लिये अथवा अशुभ भाव का अभाव दिखाने के लिये सब का समग्रहात्मक एक नित्य शुद्ध चरित्र का विगेषण दे दिया। निम्न में लौकिक सब दोषों का भी अभाव सिद्ध हो गया और चारों आराधनाओं का अतिगार रहित शुद्ध पालने का भी सचेत हो गया और भाग भी ठीक चही गृह्य गया जो कुदकुद आचार्य ने गृह्या था और उस में 'त्स एमो' पद डाल कर एमो लोप सन्वसाहृणं पद का अन्तराश्रय कर दिया।

आचार्य तो ये दोनों सूत्रकार थे पर नमिचन्द जी अत्यन्त सक्षिप्त रचिप्रिय थे। इन के सूत्रों को शानी पण्डित ही खोल सकते हैं और श्री कुदकुद आचार्य इनकी अपेक्षा कुछ विस्तार रचिवाले थे ये बातें इन दोनों के सब सूत्रों में इसी प्रकार पाई जाती हैं। अभिधेय दोनों का सबत्र सब सूत्रों में एक ही है।

एक और महापुण्य इस पृथ्वी पर आया जिस का नाम था स्वामी समन्तभद्र आचार्य जिसने दिग्विजय करके जैन धर्म को जीवित किया, ये भी सूत्रकार थे। इन्होंने साधु के स्वप्न को एक कारिका में अस्ति नास्ति के कथन द्वारा अत्यन्त सरलता से संसृत भाषा में बगन किया। अस्ति से लिखा कि जो ज्ञान ध्यान और तप में लीन हो इस में साधु के सब गुणों का समावेश किया। नास्ति से ही दोषों का समग्रहात्मक अभाव दिखाने के लिये लिखा कि जो त्रिपयों की आगा, आरम्भ और परिग्रह से रहित हो तीन से सहित हो और तीन से रहित हो वह तपस्वी गुण अथवा साधु परमेष्ठी होता है। इस के लिये नमस्कार

हो । वह कारिका इस प्रकार से —

साधु परमैष्टी का स्वरूप

विषयाशासगातीतो निरारम्भोऽपरिमहः ।

ज्ञानध्यानतपोरत्नपरवी स प्रशस्यते ॥१०॥

जो विषया की आशा को आधीनता से रहित है (इन्द्रियों के विषया की बाँटा प पग नहीं है), निरारम्भ है (कृषि वाणिज्यादि रूप मावश कम् प व्यापार म प्रयुक्त नहीं होता) अपरिमह है (धन या यादि वाय परिमह नहीं रखता तथा न मिथ्यात्वर राग द्वेष माह काम क्रोधादि रूप अन्तरंग परिमह से अभिभूत होता), पात्र ध्यान और तप म लीन रहता है (सम्यग्ज्ञान की आगधना, प्रशस्त ध्यान का साधन और अनशनादि समारन तपो का अनुष्ठान करता है) वह तपस्वी (साधु) प्रशसनीय होता है ।

फिर एक और महापुरुष का अवतार हुआ जिस का नाम था श्री अमितगति आचार्य । य संस्कृत क प्रकाण्ड विद्वान थ जिन का २२ मूर्तों का सामाधिक पाठ घर पर पढा जाता है । इहान एक महान और सुन्दर रचना की जिस का नाम है अमितगति आचकाचार । इस में आप साधु परमैष्टी के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखते है

चैरनगानलस्तात्र संतापितजगत्त्रय ।

विध्यापित शमाभोभि पापपकावसारिभि

दिघक्षयो भवारण्य ये कुर्वन्ति तपोऽनघम् ।

निराकृतागिलमया निपृहा स्वतनावपि ॥

निधानामव रक्षति ये रत्नत्रयमाहता ।

हे सद्भरित्यन्त माधवो मन्त्रवाचवा ॥

सताप को प्राप्त किया है तीन लोक जिसने ऐसी काम रूप तीव्र अग्नि को जिन्होंने पाप रूप कीच को दूर करनेवाले शान्तभाव रूप जल के द्वारा बुझाया है (अर्थात् जा पूण अणुत्रय महा मृत के धारी है) और साधु संसार रूप वन को जलान को बाधक से पापरहित तप को करत ह । और कैसे है वे साधु ? दूर किया है समस्त अतरंग और बहिरंग परिग्रह जिन्होंने और जो अपने गरीर में भी बाधा रहित हैं । दर्शन ज्ञान यात्रिरूप रत्नत्रय की रक्षा करते हैं । भव्य जीवों के वाचव साधु भगवान सत्पुरुषों द्वारा आराधित है । भावार्थ लोक में जिस प्रकार आदर सहित भटार के रक्षा की जाती है, वसी प्रकार वे साधु है ।

एवमो उक्त्वायाण का वाच्यार्थ

उपध्याय परमेष्ठा को हमारा नमस्कार हो । ये उपाध्याय परमेष्ठो साधु ही होते ह । इसलिये जितना स्वल्प साधु परमेष्ठा का पढ़ते कहा जा चुका है वह इन में पूर्ण रूप से रहता है । उसके अतिरिक्त जो विरोधता होती है उसको श्री कुन्दकुन्द आचार्य निम्न शब्दों में कहते हैं—
रमणत्तयसजुता जिणकहियपयत्यदेसयामूरा । शिक्खम्वमार्य
सहिया उक्त्वायाण परिसा होति ॥ ७४ ॥ नियमसार ।

(१) वे उपाध्याय रत्नत्रय से संयुक्त होते हैं (२) जिन कथित पदार्थों के उपदेशक होते हैं, (३) नि कश्चि भाष से सहित होते हैं, (४) शूरवीर होते हैं ऐसे उपाध्याय लिये हमारा नमस्कार हो ।

साधु-व उपाध्याय एतन्नय मे संयुक्त हाने हैं । इस कहने का आशय यह है कि जो साधु का घन द्रव्य गान चारित्र पहले बनलाया वा चुका है उससे वे संयुक्त होत है । फिर साधुओं से इनमें जो विशेषता होती है सो बताते हैं । साधु तो केवल चारित्र (मोक्षमार्ग) के साधक होत हैं, दूसरों को उपदेश करन का इनका अधिकार नहीं है । दूसरे कोई मुनि अनपढ़ भी होते हैं, कोई कम पढ़े भी रहत हैं । गान की कमी से उपदेश में अशरमाणिकता आने का डर भी रहता है । उपाध्याय गान के मंद अनुभवी होत है अन उपदेश दना पठना पाठन इनका काम है । इसी विशेषता के कारण इन का यह पद है । जिन कथित पदाधा का उपदेश करते हैं । छ द्रव्य, पञ्चस्विकाय ७ तत्त्व ६ पदाध और व्यवहार निदयय मोक्षमार्ग के संक्षेप से गिन कथित पद र्थ हैं । इनका जैसा स्वरूप दिव्यध्वनि में कहा गया है तदनुसार उपदेश करते हैं । अपनी मुक्ति से कल्पित उपदेश नहीं करते । इन को ज्ञान का तप का या त्याग का भव नहीं होता । उपदेश द्वारा श्रोतार्थों से वे कोई भोजन वस्त्र घन आदि की या वैशाख्य आदि की किसी भी कादा-इच्छा वाछा नहीं रखते हैं अथात् निर्पेक्ष भाव से उपदेश देते हैं । केवल घनमुक्ति से या घन की प्रमाणा के लिये ये उपदेश देते हैं इन में साधुओं की अपेक्षा यह ही विशेषता होती है जिससे इन में उपाध्याय की पर्याय प्रगट होती है ।

क्या यही उपाध्याय परमेशी का गुण है या कुछ और भी । सो उत्तर में कहते हैं कि वे सूर होते हैं—

शूचीर होते हैं, इस का अर्थ है कि जगत् के षट् दर्शनों तथा ३६३ मर्गों को एकान्त मार्गता का लक्षण कर अनकाल उन्मुक्त का वास्तविक समर्थन कर धार्मिकों के मन को चकनाचूर करने में भी समर्थ होत हैं। बाद-विवाद के विषया होत हैं ।

शुभो उरुम्मायाणं का अर्थ

जो रयसुत्तयमुत्तो एषिर्च घम्मोवदेसणेरिदो
मो उरुम्माओ अपा च्चिदपेसदो शुभो
तस्य ॥४३॥ द्रुप्यममह ।

जो एतन्नय मे सहित है निरन्तर धर्म का उपदग देने में तत्पर है तथा मुनिर्या म प्रधान है यह आत्मा उपाध्याय है । इससे लिये नमस्कार हो ।

उसके बाद अमितगति आचार्य ने भी इस मात्र पद पर इस प्रकार प्रकाश डाला है —

शुभो उरुम्मायाणं का वाच्य अर्थ

उनतभ्य ससत्त्वेभ्यो वेभ्यो दलितकल्मषा ।

जायत पापना विन्ना परतेभ्य इवाऽऽपगा

चरन्त पंचचाचारं भवात्तद्व्यानलं ।

द्वादरागश्रुतस्कन्धं पाठयन्ति पठन्ति ये २६

यथा बवाहृदे स्नाता न सन्ति मलिना जना

तऽर्च्यन्ते न कथं दक्षैरुपाध्याया विरेपरु ३०

अमितगति आचकाचार

जैसे परत से नदी बपजे हैं तैसे उपाध्याय से पाप नाशक पवित्र विद्या बरने है । वे उपाध्याय बड़ हैं पराक्रम सहित हैं, संसार वन को जलाने के लिये पंचाचार रूप दायानल को आचरते हैं, बाद अग रूप श्रुत स्कन्ध को

पढावेँ और पढे हैं । जिन के बचन रूप सरोवर में ग्नात करने से मनुष्य मलिन नहीं होय है । उन पाप रहित उपाध्याय को चतुर पुष्प क्यों न पूजे ? पूजे ही है ।

उपाध्याय परमेष्ठी का स्वरूप समाप्त हुआ । अब आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप कहा जाता है

आचार्य परमेष्ठी को हमारा नमस्कार हो । आचार्य परमेष्ठी भी साधु तो होते ही है उन में पूषवर्तिन साधुओं के सब गुण ता पाय ही जात है । उन के अतिरिक्त क्या विगयता है, उसका बणन श्री कुन्दकु द आचार्य इन शब्दों में करत ह

शमो आश्रीयाय वा भ्य

पचाचारसमगा परिदयदतिद्व्यण्णिद्वदलणा

धीरा गुणगभीरा आचारया एरिसा शोती

(१) आचार्य परमेष्ठी पाँच आचारों से परिपूर्ण होते हैं (२) पचेन्द्रिय रूपी हाथों के मद का दलन करनेवाले होते हैं । (३) धीर होते हैं और ४ गुण गमोर होते हैं ऐसे आचार्य हात है—उन के लिये नमस्कार हो ।

भावार्थ—साधुओं का कर्त्तव्य दर्शनाचार छाताचार चरित्राचार तपाचार और वायाचार का पालन है । इन आचारों को साधु और उपाध्याय भी पातते ह किंतु आचार्य इन के पालन में इतने दृढ और प्रौढ हो जात है कि उन से इन में किसी प्रकार के अतिचार (दोष) नहीं लग पाते और न उनके पालन में कोई कमी रहती है । अतः ये अनार आचार्य परमेष्ठी के गुणों में कहे गये हैं ।

दशम और दशनाचार में क्या अन्तर है ? सम्यग्दशन की प्राप्ति को दर्शन कहते हैं और उसे ४४ दोषों (८ मव,

३ मूत्रा, ६ अनायतन, ७ अथ, ८ शक्रादि दोष, ७ व्यसन
 ५ श्रुतीचार) से रहित पालना तथा निःशक्तित्व आदि
 प्राठ अंग और प्रगम आदि आठ गुणों से परिपूर्ण पालना
 दशनाचार है । दर्शन का आचार या दर्शन सम्बन्धी
 आचार दशनाचार है ।

सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति ज्ञान है । इसे शब्दाचार, अपाचार
 उभयाचार, कालाचार, विनयाचार, अनिहवाचार और
 बहुमानाचार, इन ज्ञान के ८ गुणों सहित पालना तथा
 प्रमाण नयों द्वारा सत् सत्ता आदि और निर्देशत्वाभित्व
 आदि अनुयोगों द्वारा अस्ति आदि सप्त भंगी द्वारा चारों
 निक्षेपों पर बही सावधानी से ठोक ठोक प्रयोग करना
 ये सब ज्ञान सम्बन्धी आचार होने से ज्ञानाचार है ।

इन्द्रिय सयम तथा प्राणी सयम के पालन को चारित्र
 कहते हैं । उस ५ महाग्रन्थ, ५ समिति, ३ गुप्ति, द्वारा निर्दोष
 साधना चारित्र सम्बन्धी आचार होने से चारित्राचार है ।
 ६ धातु और ६ अभ्यन्तर तपों का पालना निर्दोष तपाचार
 है और इन चारों आचारों की उत्सग और अपवाद की
 मैत्री पूवक प्रवर्तनसार म बताई हुई विधि अनुसार शरीर
 और आत्मशक्ति के विवेक पूवक रक्षा करना अपनी शक्ति
 का न छिपाना वायाचार है । जीर्ण ने अनादि से इन
 का कभी अभ्यास नहीं किया है । साधु पद में इनका
 अभ्यास प्रारंभ करता है । बहुत समय तक उसमें अतिचार
 लगते रहते हैं जो निदा गदा तथा प्रायश्चित्त द्वारा संशोधन
 करते रहते हैं फिर कुछ समय बाद साधु इन म प्रौढ़ और
 निपुण हो जाता है उससे उसके आचार्य पयाय की वद्वृत्ति
 कही जाती है ।

(२) इन्द्रिया पाच है। लगान, रगना, प्राण वस्तु और भोज। इन के विषय है ८ रगना, ४ रस = तीव्र ४ पण और ७ रस। इन में प्रत्येक व दो दो भेद हैं। इष्ट अर्थात् लगान्वाले तथा अनिष्ट पुरे लगान वाले। अनर्दि काल में ये जीव इन्द्रिय विषयों की वाग्द्वारा से पर्म नून हुआ इष्ट में राग और अनिष्ट में द्वेष करता है और इतक मद् में (नाना में) पूर हुआ संसार में भ्रमण करता है। मुनि धरण्या में जीव इष्टे जानना प्रारंभ करता है और बहुत समय तक अन्वयण के बाद ४ इन्द्रिय स्त्री हार्थी के मद नष्ट करने में समय हो जाता है। तब प्रसक्त आचार्य पयाय की नन्दमूर्ति होती है। इस निय पाच इन्द्रिय विजयी भी आचार्य परमेष्ठी का गुण है।

(३) घोर हात है। मुनियों पर वाइस परीषद् आती है। तथा अनक व देव, धनुष्य, तियस्य और अपेतन हृण उपसर्ग भी आत है। मुनि उन को यथाशक्ति जीतने का पुण्यार्च भी करत हैं। जीतते जीतते जब ये इतने धीरवीर हो जाते ह कि जिस तरह सुमर को वायु तहाँ बनावमान कर सकती वसी प्रकार भारी से भारी परिषद् और उपसर्ग भी व ह मातृमार्ग में नहा दिला सकने। तब इन की आत्मा में आचार्य पयाय प्रकट हो जाती है। इसलिये घोर भी आचार्य का एक गुण है।

(४) पुण्यगंभीर होते हैं। ये अनेक जीवों को दीक्षा दत हैं शिखा दत हैं मन के लगे हुए दोषों को प्रायश्चित्त विधि द्वारा पुद् करते हैं। पौरुषेय दोषों को और उन के दूर करने कराने की विधि में ये निपुण होते हैं। संघ में इनका व्यवहार इतना सुगल इष्ट मिष्ठ होता है कि प्रत्येक

मुमुक्षु जीव इन की शरण में रहकर धर्म साधना करने को अपना सौभाग्य मानता है । जीवों के दोषों को गुप्त रखता है । हर प्रकार से चैन धर्म की रक्षा करना जानता है । द्रव्य क्षेत्र काल भाव और लोकव्यवहार के ज्ञाता होता है और तदनुसार सध का विहार तथा ठहराव करने का आदेश देता है । इस जहा तक कहें एक सध पति में जितने गुण होने चाहिये व सब स्वतः सिद्ध स्वभाव से इनमें रहत ही हैं । ऐसा कुछ आचार्य पर्याय का अविनाभाव है । अतः गुणगंभीर भी आचार्य का एक विशेषण है ।

उपरोक्त सब गुण समूह का अविनाभाव है और इन गुणों की आत्मा ही आचार्य परमेशी है ऐसा भी कुछकुछ आचार्य देव का भाव है । इन के बाद आचार्य नमिन्द्र इस प्रकार लिखत है —

दंसण णाणपहाणो वीरियचारित्तवरत्तवायारे
अप्य परं च जु जइ सो आचरि ओ मुणी मेओ

(१) दणनाचार और (२) ज्ञानचार की प्रधानता सहित (३) वीर्याचार, (४) चारित्ताचार और (५) श्रेष्ठ तपाचार इन पांच आचारों में जो आप भा तत्पर होत हैं और अन्य शिष्यों को भी जगाते हैं वह आचार्य मुनि ध्यान करन योग्य है, (अर्थात् उस के लिए नमस्कार हो) ।

भावाय - द्रव्यलिङ्गी मुनि भी इन पांच आचारों को ठीक आगम की आज्ञानुसार पालता है तो भी वह आचार्य नहीं है क्योंकि उस में वास्तविक सम्यग्दर्शन ज्ञान की पर्याय कि जो इन आचारों को सम्यक धरता है - वह

प्रगट नहीं हुई है । अतः उक्त द्रव्यलिङ्गी के आत्मविक
आचारवत का निषेध करने को दशमोक्तान प्रधान पद दिया
है । तप के साथ जो पर विगण्य है वह मिथ्याऋषि के
हिंसा मय पंगमि आदि तप का निषेध करने के लिये है
जैन धर्म में १२ तप उत्तम श्रेष्ठ कहन की आगम पद्धति
है क्योंकि ये सबया अहिंसारूप हैं ये पञ्चाचार को रख
तो निर्दाय पालने ही हैं किन्तु मुनियों को प्रायश्चित्त विधि
द्वारा शुद्ध करके और गौरवरूप स चतुर्गिषु सद्य को उनकी
योग्यता और पदानुबूल, पलवाते हैं । इसी योग्यता क
आधार पर इनके य आचार पयाय प्रगट हुए हैं ।

अथ आचार अमितगति महाराज का आदेश
मुनिये —

चारमत्ययुमयन्ते पञ्चाचारं चरति ये ।

जनका इव सर्वथा जीवाना, हितकारणम् ॥

येषा पादपरामश लीया मुञ्चन्ति पातकम् ।

सलिल हिमरदमाना चद्रकान्तोपला इव ॥

उपदेशै स्थिरं येषा चारित्रं त्रिचतेतराम् ।

ते पूज्यन्ते त्रिधाऽधार्यं पदं वयं दिव्यासुभिः ॥

दशनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार वीर्या
चार ये जो पाँच आचार हैं उनको जो सब जीवों को
आचरण करवाते हैं आर आप आचरण करते हैं जैसे
पिता हित को आचरण करता है । जिन के चरण का
स्पर्श होने पर जाव पाप को त्यागता है जैसे चद्रमा की
किरणों का स्पर्श होने पर चद्रकान्त पत्थर जल को छोड़े

हैं, जिनके उपदेशों द्वारा चारित्र्य अतिशय कर स्थिर किया जाता है वे आचार्य हैं। श्रेष्ठ-पद जो मोक्षपद को जान की है वाण्ड्या जिन के ऐसे पुरुष उनको मन बचन काय से पूजते हैं, इस प्रकार आचार्य परमेष्ठी का स्वरूप कहा।

एगो अरहंताण तीर्थंकर आप्त का स्वरूप

अरहंतों के लिये नमस्कार हो। आत्म विकास की श्रेणिया-साधु उपाध्याय आचार्य परमेष्ठीयों का कथन हो चुका। इन तीनों का गुणस्थान भी एक ही होता है छठे से बारहवा। इनकी गुरु सत्ता भी है। ये तीनों दिग्गम्यर सन्त होते हैं। नियम से छपाय होते हैं। रत्नत्रय के धारी होत हैं, इनमें से थोड़ी सी विशेषता यही है कि उपाध्याय मुख्यतया मुनियों के अध्यापक पाठक होते हैं और आचार्य मुनि संघ के संरक्षक होते हैं। अग्नि साधना की अपेक्षा तीनों साधु होते हैं और समान होते हैं।

इनमें से कोई भी साधु या आचार्य जब ध्यान में विशेष लीन हो जाते हैं तो उनके शुक्ल ध्यान रूप आठवें से बारहवें गुणस्थान होता है। जिसके फल स्वरूप धातिकर्मों के क्षय हो जाते हैं। इन धातिकर्मों के क्षय होते ही आत्मा का ज्ञायक स्वरूप जो आजतक शक्तिरूप से सत्ता में पड़ा था स्वतः अपने स्वभाव परिणामन को अंगीकार कर लेता है और फल स्वरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप। चतुष्टय आत्मा में प्रकट हो जाता है। इन्द्रिय ज्ञान का सम्बन्ध टूट जाता है। आत्मा बिना इन्द्रिय और मनके तीन काल और तीन

लोक के समस्त पदार्थों को युगपत् एक समय में स्वीया स्वतन्त्र आत्मा से जानने देखने लगता है । इन्द्रिय और इन्द्रिय विषयों के भोग का सम्बन्ध भी समाप्त हो जाता है और शायक के प्रदेशों में से समय समय घटने वाला अनन्त अतीन्द्रिय सुख को भोगा करता है ।

अनन्त धीय के बल से इन ज्ञान दर्शन सुख को स्थिर रखता है तब अपने परिणामन को बदल परम शौचार्थिक हो जाता है और स्फटिक बत निर्मल शुद्ध हो जाता है । आहार निहार आदि शरीर सम्बन्धी सब विक्रिया या दुःख मिट जाते हैं । अर्थात् अन्तरंग और बहिरंग (आत्मसम्बन्ध या शरीर संबन्धी) सब दोष मिट जाते हैं जिसके कारण १८ दाप रहित और शुद्ध कहे हैं । ऐसा आत्मा का एक दम अलौकिक विकास होता है । जिस विकास (पर्याय) का नाम अरहन्त है । ये सकल परमात्मा (शरीर सहित परमात्मा) जीवन मुक्त कहलाते हैं । गुणस्थान तेरहवा हो जाता है । उपसर्ग और परीपहों का सर्वथा अभाव हो जाता है । अरहन्त साक्षात् मोक्षमार्गी है । आत्मोन्नति की यह वशा इस गुणस्थान में प्रत्येक जीव की होती है ।

इस प्रकार इस गुणस्थान में धम (रत्नत्रय) की अपेक्षा कुछ अन्तर न रहने पर भी पुण्य की अपेक्षा कुछ जीवों में कुछ अन्तर होता है और यह यह है कि कुछ जीव तीर्थंकर प्रकृति वाले होते हैं । उसका यहाँ तेरहवें गुणस्थान में उदय हो जाता है । जिसके फल स्वरूप इंद्र अपने सेवकों से समवशाएण की रचना कराता है । जिसमें १२ समा होता है । यहा स्वतः उन की दिव्यध्वनि खिरती है अर्थात् कर्मों के उदय के कारण खिरती है केवली का

को, उपयोग इसमें नहीं लगता, वे तो उस समय भी आत्म-गुण ही रहते हैं। केवल ज्ञान के कारण इस बाणी को प्रमाणता है, ऐसा निश्चित नैमित्तिक सम्बन्ध है। गणधर इसे मैत्र कर द्वादशांग की अंग पूर्व रूप रचना करते हैं।

भ-यों के पुण्यानुसार और भगवान के योग रहने से देश विदेश में बिहार होकर धर्माभूत की वषा होती है। जिसको सुन कर भय जीव संसार तापको दूर करते ह। इस प्रकार प्रत्येक तीर्थंकर अपनी शेष आयु प्रमाण इस काय को किया करते हैं। बाणी के कारण इनकी आप्त सज्ञा हो जाती है। एमो अरहताण में मुख्यतया इन जीवा को (तीर्थंकरों का-आप्त को) नमस्कार किया गया है। क्योंकि चौतीस अतिगय तथा आठ प्रतिहार्य इन के ही होते हैं। इन भावों को श्री कुन्दकुन्द आचार्य ने निम्न दो पदों में पूया है —

एमो अरिहताण का वाच्य अर्थ

पणणादकम्मरहिया केवलणाणाइपरमगुण- ३ ॥

सहिया ४

चोत्तिसञ्जुत्ता अरिहताण परिसा होंति १७१॥

इय धाइकम्ममुक्को अट्टारहदोसवज्जिओ सयलो

तिहृषण भवणपपइवो द्दु मम उत्तम, बोई

अरहत भगवान जो अनन्त सचन बंधे हुए थे, ऐसे चार घाति ज्ञानाचरण, मोहनीय और अतर्क्य (आत्म गुणों को घातने वाले) कर्मों को नष्ट कर देने के कारण वन से रहित हो जाते हैं और इसके फल स्वरूप जो अनन्तज्ञान अनन्त ध्यान अनन्तमुख अनन्तवीर्य आदि

अनन्त षट्शुष्ट गुणों सहित हो जाते हैं तथा जो अपने विशिष्ट पुण्योदय से चौतीस अतिशय संयुक्त होते हैं—ऐसे अरहत होते हैं । इस प्रकार ये चार पातिकर्मों से मुक्त आत्मासशरीर होने पर भी जन्म जरा आदि अठारह दोषों से रहित होते हैं । इसे ही दूसरे शब्दों में जीवन मुक्त अथवा सवेद मुक्त आत्मा कहते हैं । ये तीन भुवन के प्रकाश करने के लिये प्रदीप स्वरूप भगवान् अरहत मुझे उत्तम बोध दें ।

और भी —

प्रातिहार्योऽष्टकं कृत्वा येषा लोकातिशयिनाम् ।

सपर्या चक्रिरे सर्वे सादरा भुवनद्वरा ॥४॥

यचाक्षि तापहारीणि पवासीव पयोमुख ।

क्षिन्तो लोकपुण्येन भूतले विहरति ये ॥५॥

आद्यसंहतिसर्यानां नि स्वेदा क्षीरशोणिता ।

राजते सुन्दरा येषा सुगांधरमला तनु ॥७॥

येषा द्विष्टं स्वयं याति तुष्टो लक्ष्मी प्रपद्यते ।

न रुष्यति न तुष्यति ये तयोः समष्टय ॥८॥

लक्ष्मी सातिशया येषा भुवनस्त यतोपिणोम् ।

अनयभावनी शक्तो बभूवु कश्चिन्न विद्यते ॥९॥

रागद्वेषमध्कोषलोभमोहादबोऽखिला ।

येषु दोषा न तिष्ठन्ति तत्तेषु नकुला इव ॥१०॥

शक्तितो भक्तितोऽहृतो जगतीपतिपूजिता ।

ते द्वेषा पूजया पूवया द्वेषभावस्वभावया ॥११॥

जिन के छत्र चमार आदि अष्ट प्रातिहार्य रत्न कर सबलोक के नायक जो इन्द्रादिक हैं वे आदर सहित लोक में अतिशय उपजान वाली पूजा करत भयः॥५॥ और जैसे मेव जल की बरसाता लोक म विचरे तैसे संताप हरनेवाले षष्ठी को फैलावते सन्तै मध्य जीवों क पुण्यकर पृथ्वी तल में विहार करे हे ॥५॥ और जिन का देह सुन्दर सुगंध रूप निमल सोई हे । कैसा हे देह आदि का वस्त्र धूम नाराच हे सहनन जिस म और आदि का समचतुरक हे सम्पान जिस का और पैसेव (पसीना) रहित और दूध समान सफेद हे रंधर (खून) जिन का ऐसा हे ॥५॥ और जिन से द्वेष करने वाला पुरुष नाश को प्राप्त होय हे और भक्ति करने वाला जन्मी को प्राप्त होय हे और वे भगवान न द्वेष करत हे और न राग करते हे तिन दोषनि में समान परिणति हे ॥५॥ जिन की अतिशय सहित और तीन भुवन को संतोष करन वाली और अंध हरिहर आदि में नपाइए एसी जो जन्मी उस को कहने को कोई समर्थ नहीं ॥६॥ और राग द्वेष मद मोह लोभ मोह इत्यादिक समस्त दोष जिनमें नहीं हैं जैसे तप्त भूमि म नोले नहीं रहते हैं ॥१०॥ इन्द्रादिको के द्वारा पूजित वे अरिहन्त भगवान शक्ति भक्ति से द्रव्य भाव स्वभाव रूप दोष प्रकार पूजाकर पूजने योग्य हैं ॥११॥

अरिहन्त परमेश्ठी का स्वरूप पूरा हुआ अब सिद्ध परमेश्ठी का स्वरूप कहते हैं ।

एगो सिद्धाण

सिद्धो को हमारा नमस्कार हो । सिद्ध आत्मा का सर्वोत्कृष्ट विकास हे और आत्मा का वास्तविक स्वरूप हे ।

अतः इस पर हम सूक्ष्मता से कुछ विचार के साथ विचार करेंगे । सर्व प्रथम सिद्धों के स्वरूप पर लिखी हुई पचासिकाय में श्री कुन्दकुन्दाचार्य की यह गाथा है —

आणावरणादौया भावा जीवेण सुदु, अणुद्धा
तेसिमभावे किन्चा अभूदपुब्बो इवदि सिद्धो

अय-ज्ञानावरण आदि (भाव) द्रव्यकर्म जीव के साथ भला भाति अनुबद्ध है । उनका अभाव करके वह जीव अभूतपूर्व-सिद्ध पर्याय को प्राप्त होता है ।

भाचार्य — यदि पर्याय दृष्टि से देखें तो सिद्धत्व रूप से, जो शायक का परिणाम है वह सार्व अनन्त है ।

फिर भी वह शक्ति की अपेक्षा से अतत् का उत्पाद नहीं है । अनादि काल से ससारी जीव में जहां पर्यायदृष्टि से मनुष्यादि ४ गतिदों रूप से परिणाम हो रहा था वहां द्रव्यदृष्टि से इन पर्दायों में रहने वाला अनादि अनन्त रूप था । स्वभाव की अपेक्षा कोई नई चीज कहीं से नहीं आई है । इस गाथा से हम 'सोऽह' की शिक्षा मिलती है कि जो सिद्ध है वैसे मेरा स्वभाव है । मेरा यह पर्याय स्वरूप तो क्षणिक है, कमजूर है, अभूताय है व्यवहार है और मेरा नित्य है, अकृत्रिम है, भूतार्थ है निश्चय है । अब श्री कुन्दकुन्द आचार्य की नियमसार में निम्न गाथा सिद्ध के स्वरूप की प्रकाशक है —

एदुद्धकम्मर्षवा उदुमहागुणसमखिणया परमा ।

लायमाटिया खिन्चा मिद्धा त परिसा होति ॥७२॥

सिद्धा ने आठ कर्मा व बंध को नष्ट किया है । सिद्ध आठ महागुणों सहित हैं । सिद्ध परम हैं । सिद्ध लोक

वे जन्म में स्थित हैं और सिद्ध नित्य हैं-ऐसे वे सिद्ध होते हैं । भाषाय आगे बिलकुल स्पष्ट किया गया है ।

जाइजरमणरहिय परमं कम्मद्वयज्जियं सुद्धं ।

याणाश्चउसहाव अणखयम'वणासमन्देयं ॥१७६॥

-नियमसार ।

सिद्ध भगवान् जन्म, जरा मरण रहित हैं । परम हैं । आठ कर्म रहित हैं । शुद्ध हैं, ज्ञानादिक चार स्वभाव वाले हैं । अक्षय हैं । अविनाशी हैं और अक्षेय हैं ।

अव्यावाहमण्णिदियमणोवम पुण्णपावणिम्भुक्कं ।

पुण्णरागमण विरहिय खिचं अचलं अणालम्भम्

-नियमसार

सिद्ध भगवान् अव्यावाहक हैं । अनीन्द्रिय हैं । अनुपम हैं । पुण्यपाप रहित हैं । पुनरागमन रहित हैं । नित्य हैं । अचल हैं और निरागम्य हैं ।

एवि दु वरं एवि सुक्खं एवि पोढा खेव विव्वज्जेवाहा
एवि मरणं एवि जख्खं तत्थेव य होइ खिन्नाण ।

नियमसार ।

जहा दु ख नहीं है । जहा इन्द्रिय सुख नहीं हैं । जहा पीडा नहीं है । जहा 'षांघा' नहीं है । जहा मरण नहीं है । जहा जन्म नहीं है । वहा निर्वाण है ।

एवि इन्द्रिय उवसग्गा एवि मोहो विग्घियो एसिद्धाय
ए तिण्हा एव छुहा तत्थेव य होइ खिन्वाणं १८०

-नियमसार

जहा इन्द्रिया नहीं हैं । जहा उपसर्ग नहीं है । जहा विमय नहीं है । जहा लुपा नहीं है । जहा छुधा नहीं है वहा निर्वाण है ।

एवमि कर्म एव कर्म एव चिन्ता रोध अदृक्कदाणि ।

एवमि धम्ममुपकमाणे तत्थप य होइ एण्वेणं १८१

नियमसार ॥

जहा कर्म और नोकर्म नहीं है । जहा चिन्ता नहीं है । जहा आत और रौद्र ध्यान नहीं है । जहा धम और शुक्ल ध्यान नहीं है-वहा निबाण है

विज्जदि केवलणाणी केवलसोवत्तं न केवलं विरयं ।

केवलदिद्धि अमुत्ता अत्यत्ता सत्पदेरुत्ता । १८२॥

सिद्ध भगवान को सबल ज्ञान हाता है, कवन दर्शन होता है । केवल सुख होता है और कवन वीर्य होता है । अमृतत्व होता है । अस्तित्व होता है । और सप्रदेशत्व होता है । नियमसार

अब सिद्धों के स्वरूप पर प्रकार डालने वाली एक गाथा भगवतों आराधना और एक पंच सप्रह में है —

एण्वेवावइत्तु ससारमहग्गि परमणि पुदिजलेण ।

एण्वेवादिभाववत्थो गदजाइसरामरणरोगो ॥

भागवती आराधना

जह केचणमग्गिमयं मुच्चइ किट्टेण कल्लियाए व ।

तह कायवधमुक्का अकाइया माणमोएण ॥

परम शान्ति रूप जलसे संसार रूप अग्निको धुक्का कर जो निर्वाणरूप अपने स्वभावमें स्थित हो गये हैं जिन के जन्म जरा मरण एवं रोग नहीं रहे हैं वे शरीर रहित मुक्तात्मा सिद्ध कहलाते हैं । जैसे आग में तपाया हुआ सोना किट्टिका (बहिरंगमल) और कालिमा (अन्तरमल) से छूट जाता है वसी प्रकार ध्यान के द्वारा शरीर तथा द्रव्य है कम (ज्ञानावरणी आदि अष्ट कर्म रूप बहिरंगमल) एवं भावकर्म (राग द्वेष आदि भाव रूप अन्तरंग, मल, उदित

होकर यह जीव सिद्धात्मा बन जाता है। कार्य के बचन से मुक्त हुए ये जीव अच्यविक कहनाते हैं।

श्री नेमीचन्द्र आचार्य ने गोमटसार जीवकाण्ड में भी निम्न गाथा सिद्धों के स्वरूप की दी है —

अट्टविहङ्गमवियत्ता सीदीभूदा खिरजया खिचथा
अट्टगुणा किदकिन्था लोयगणिवसिणो सिद्धा ॥१६॥जीवकाण्ड

जो शापावस्थादि आठ कर्मों से रहित है। अनन्त सुखरूपी अमृत के अनुभव करने वाले शान्तिमय हैं। नवीन कर्म बंध को कारणभूत मिथ्यादर्शनादि भावकर्म तपी अग्नि से रहित हैं। नित्य हैं। ज्ञान, दान, सुख, चार्य, अज्ञायाध, अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुञ्जधु थ आठ गुण गुण जिनके प्रकट हो चुके हैं। कृपाशून्य हैं (जिनकी कोई कार्य करना बाकी नहीं रहा है) लोकके अपभाग में निवास करने वाले हैं। उनको सिद्ध कहते हैं।

आइत रामरुभया संजोगधिजोग दुक्खसण्णाओ - -
रोगादिया य जिस्से ण संति खा होदि सिद्ध गई ॥१५१॥जीवकाण्ड

पचद्रिग आदि जाति युत्ता मरण, भय, अनिष्ट संयोग, श्वाविद्योग, इन से होनवाला दुःख, आहारविषयक संता (बाधा) और रोगादिक जिस गति में नहीं पाये जाते उसको सिद्धगति कहते हैं ॥

एचि इदिमकरणजुवा अवगहादीहि गोहया अत्ये ।
येव य इदियसोवेत्ता अण्णिदियाणवणाणमुदा ॥१७३॥जीवकाण्ड

वे मुक्त जीव इन्द्रियों की क्रिया से मुक्त नहीं हैं । तथा अयमहादिक त्रयोपशमिक ज्ञान के द्वारा पदार्थ का ग्रहण नहीं करते । और इन्द्रिय जन्म मृत्युसे भी मुक्त नहीं हैं, क्योंकि उन मुक्त जीवों का अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख अतिन्द्रिय है ।

जहर्कचरणमग्निगय मुचइ किट्टेण कालियाण्य तइ कायवचमुक्का अकाट्या माएजोगेण ॥२-२॥ जीवकाण्ड

जिस प्रकार अग्निके द्वारा सुसंस्कृत सुवर्ण घात और अभ्यन्तर दोनों ही प्रकार के मल से रहित हो जाता है वस ही प्रकार ध्यान के द्वारा यह जीव शरीर और कमबच से रहित होकर सिद्ध हो जाता है ।

किण्हादिनेसरहिया ससारविणिग्गय अणतमुहा । सिद्धिपुरं संपत्ता अनेरिया ते मुणेयव्वा ॥३५५॥ जीवकाण्ड

जो कृप्या आदि छहों लेश्याओं से रहित हैं, अतएव जो पच परिवर्तनरूप ममार समुद्र के पार को प्राप्त हो गये हैं, तथा जो अतीन्द्रिय अनन्त सुख से लभ हैं, और आत्मोपलब्धिरूप सिद्धिपुरी को जो प्राप्त हो गये हैं, उन जीवोंको सिद्ध भगवान कहते हैं ॥

एव जे भव्वाभव्वा मुत्तिमुहाती वृणतसंसारं ते जीया एवव्वा ऐव य भव्वा अभव्वाया ॥३५६॥ जीवकाण्ड

जिन का पाच परिवर्तन रूप अनन्त संसार-सर्वथा छूट गया है और जो मुक्ति सुख के भोक्ता हैं उन जीवों

को न तो भव्य समझना चाहिये और न अभव्य समझना चाहिये, क्योंकि अब उनको कोइ-नवीन-अवस्था प्राप्त करना शेष नहीं रहा है इसलिये वे भय भी नहीं हैं और अनन्त चतुष्टय को प्राप्त हो चुके हैं इसलिये अभव्य भी नहीं हैं ।

श्री नेमीचन्द्र आचार्य ने द्रव्यसंग्रह में सिद्धों की ये दा गाथा दी है—

गिहकृत्मा अट्टगुणा किंशुणा परमदेहो सिद्धा ।

लोयगाठिदा शिखा उपपादवर्हि संजुता ॥१४॥

एट्टकृत्मादेहो मोयानोयस्य पाणश्रो दहा ।

पुरिसायारो अप्पा सिद्धो मायइ लोयसिहरत्यो ॥१५॥ द्रव्यसंग्रह

सिद्ध भगवान् ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित है । सम्यक्त्व आदि आठ गुणों के धारक है । अन्तिम शरीर से कुछ कम आकारवाले हैं और लोक के अग्रभाग में स्थित हैं । नित्य हैं तथा उत्पाद ध्वय से संयुक्त हैं । आठकर्म और शरीर को नष्ट करनेवाले हैं । लोकालोक को जानने देखने वाले हैं, पुष्पाकार हैं । लोक शिखर पर विराजमान हैं जैसी आत्मा सिद्ध परमेष्ठी है । अतः तुम सब इस सिद्ध परमेष्ठी का ध्यान करो ।

उपरोक्त जितनी प्राश्न कीं गयीं दी हैं उन सब का भावाय इसप्रकार है -

१ निष्कर्माण-मुक्त आत्मा निष्कर्माण है क्योंकि द्रव्यकर्मा और भावकर्मा से विमुक्त हुए है । द्रव्यकर्म वे पुद्गल रक्थ है और भावकर्म वे चिद्विवर्त हैं । चित्शक्ति अनादि ज्ञानावरणा आदि कर्मा के सम्बन्ध से संकुचित

व्यापारवाली होने के कारण ज्ञेयभूत विश्व के (समाप्त पदार्थों के) एक एक देश में क्रमशः व्यापार करनी हुई विवर्तन को प्राप्त होता है। किंतु जब ज्ञानावरणादि कर्मों का सम्बन्ध विनष्ट होता है तब वह ज्ञेयभूत विश्व के सब देशों में युगपत् व्यापार करती है। यही द्रव्य कर्मा के निमित्तभूत भावकर्मा के कर्तृत्व का विनाश है। यही विकार पूर्वक अनुभय के अभाव के कारण औपाधिक सुख दुःख परिणामों के भोक्तृत्व का विनाश है। यही अनादि विवर्तन के खेद के विनाश से जिसका अनन्त चैतन्य सुरियत हुआ है ऐसे आत्मा के स्वन त्र स्वरूपानुभूति लक्षण सुख का (स्वतंत्र स्वरूप की अनुभूति जिस का लक्षण है ऐसे सुख का) भोक्तृत्व है।

२ अष्टगुण - अनादि से आठ कम के निमित्त से जो नैमित्तिक आठ गुण अशुद्ध हो रहे थे-प्राय औद्यिक आदि भाव रूप परिणमन कर रहे थे, वे सर्वथा स्याधिक भाव, रूप, परिणत हो जाते हैं। अर्थात् जैसा उन का स्वभाव था वे ठीक उसी रूप में आ जाते हैं। विकृति सब निकल जाती है। बस यदि आठ गुणों की प्राप्ति है। वे आठ गुण इस प्रकार हैं -

सर्भाकित दर्शन ज्ञान, अगुरलघु अवगाहना ।

सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण हिद्ध के ॥सिद्ध पूजा॥

(१) अचल सम्यक्त्व मोहनीय कर्म के क्षण से अस्त जीवादि तत्त्वों के विषय में विपरीताभिनिवेश हेतु परिणाम रूप अचल सम्यक्त्व प्रकट होता है ।

(२) अनन्तज्ञान ज्ञानावरणीय के क्षण से युगपत् लोका

लोक में रहने वाली समस्त वस्तु विज्ञेय का परिच्छेदक अनन्तज्ञान (शुद्ध ज्ञान) प्रकट होता है ।

(३) अनन्तदर्शन दर्शनाधारण के क्षय से वस्तु सामान्य का प्रादुर्भाव अनन्त दर्शन (शुद्ध दर्शन) प्रकट होता है ।

(४) अनन्तवीर्य-अन्तराय कर्म के क्षय से अनन्त पदार्थों की जानकारी के विषय में खद रहित जानपना रूप अनन्तवीर्य प्रकट होता है ।

(५) अज्ञाबाध सुख — वेदनीय कर्म के क्षय से स्वप्रत्यय, अमृतेसंबन्ध अज्ञाबाध अनन्त सुख अनुभव करता है ।

(६) परम सूक्ष्मता-आयु कर्म के क्षयसे परम सूक्ष्मता होती अर्थात् अमृतिक अवस्था प्राप्त हो जाता है ।

(७) परम अवगाहन-नाम कर्म के क्षयसे परम अवगाहना गण प्रकट होता है ।

८ अगुरुलघु-गोत्र कर्म के क्षय से स्वभाविक अगुरुलघु गुण प्रकट होता है ।

(३) चामदेह से किंचित् अन-देह प्रमाणात्त्व के कारण जो आत्मा के प्रदेश अन्तिम शरीराकार ये वे शरीर के निकल जान पर बुद्ध कर्म वही आकृति को धारण किये हुए निरुपाधि स्वरूप में जा सिद्धो में विराजमान हो जाते हैं । इसके न मानन से गून्धता का प्रसंग आता है अथवा जो शून्यरूप मोक्ष मानते हैं उनका इसी से स्पष्टन होता है । मोक्ष होने पर आत्मा अणुमात्र हो जाता हो या सबलोक में फैल जाता हो या ज्योति में ज्योति मिलकर अद्वितीय ब्रह्म बन जाता हो सो बात नहीं है ।

४ लोकाप्रियता — ये विज्ञेयता पर क्षेत्र की अपेक्षा

है । चौदहवें गुणस्थान के अन्त में जो आत्मा कर्म से मुक्त हुवा तो क्या वही ठहरा रहता है या सर्व लोक में फैल कर ज्योति में, ज्योति मिल जाती है ? या फिर क्या दशा होती है ? उस को समझाने के लिये कहा है कि, उर्ध्व गमन स्वभाव के कारण ऊपर उड़ता है और लोक के अग्रभाग में जाकर उसी अन्तिम पुण्याकार में बना रहता हुआ स्थित हो जाता है । आगे घमासिकाग का अभाव होने से गमन नहीं करता । और, संकोच, विस्तार के कारण गोग का अभाव होने से आकारान्त का भी धारण, नहीं करता । फिर अन्त त काल तक उसी आगर में निश्चल ज्यों का त्यों वही ठहरा रहता है । इसी विशेषण के अन्तर्गत उर्ध्वगमन स्वभाव का भी निरूपण स्वत हो जाता है । जहा मुक्त हुवा या वही ठहरा रहता हो जो सब लोक ज्योपारी होकर ठहरता हो सो बात नहीं है ।

५ नित्य-वद् अनादि सत संसार अवस्था में मनुष्य आदि पर्यायों में अशने स्वभाव का विना, छोड़े परिणामन किगा करता था । संसार के अन्त होते ही उस नैमित्तिक उत्पाद व्याय का सदा के लिये, अन्त हो जाता है । उस को, नित्य विशेषण से सम्बोधित किया है । मुक्त होने के बाद फिर कभी संसार में आता, हो इसका भी खण्डन हो जाता है ।

६ उत्पादव्ययाभ्या सयुक्ता, अब प्रश्न यह होता है कि जब मनुष्य आदि, पर्यायों द्वारा, उत्पादन व्यय सदा के लिये नष्ट हो जाता है तो क्या फिर, वह, परिणामन रहित घटस्थ हो जाता है ? उत्तर सिद्धों के, उत्पादन और व्यय दो प्रकार से घटित होते हैं । स्वप्रत्यय से और परप्रत्यय से । आगम की प्रमाणता से, माने जाने वाले

अनुम्लघु की पलायन पतिव हानि वृद्धि से सिद्धों के अन्तर्गत उद्गाद और व्यय है । पर प्रत्यय की अपेक्षा उद्गाद और व्यय इस प्रकार घटित होते हैं कि 'प्रत्येक द्रव्य में वर्तमान पर्याय व्यक्त रहती है और शेष पर्यायें शक्ति रूपा से अव्यक्त रहती हैं' प्रति समय वर्तमान व्यक्त अथ पयाय अव्यक्त हो जाती है और शक्ति रूप अव्यक्त अर्थ पर्यायों में से द्रव्य स्वरूप काट भव भाव के निमित्त से व्यक्त हो जाती है । इसी प्रकार ज्ञान भी व्यक्त अव्यक्त रूप से जानता है । अर्थात् ज्ञेय पदार्थ भी प्रतिक्षण नवीन पर्याय के उद्गाद और वृद्ध पर्याय के व्यय रूप से परिणत हो रहे हैं इनको जानने के कारण सिद्धों के ज्ञान में भी प्रतिक्षण परिणमन होता रहता है । अर्थात् जिस पदार्थ की विशिष्टता पयाग इन समय उपमन हुई, उसका सिद्धों के ज्ञान में उद्गाद रूपा से परिणमन हुआ, और अनन्तर क्षण में जब उस पर्याय का व्यय हुआ, सिद्धों का ज्ञान भी व्यय रूप से परिणत हुआ, इस प्रकार परप्रत्यय से सिद्धों के उद्गाद और व्यय घटित हो जाते हैं (श्रीसर्वाय सिद्धि अध्याय ५ सूत्र ७ की टीका) ।

७ परम-सिद्ध परम है अर्थात् आत्मा के उच्चतम विकास रूप है इस में उपर और आत्मा का कोई विकास नहीं है । (८)-अचल अर्थात् याग-कम्पन से रहित है । इनके अतिरिक्त और जितने विशेषण आये हैं वे सब सरल होने के कारण नहीं खोल हैं । श्रीपूज्यपाद आचार्य सिद्ध के स्वल्प को इस प्रकार लिखत हैं-

येनात्माऽनुभ्यतात्मैव परत्वनेव चापरम् ।
अन्यानात्तपोधाय तस्मै सिद्ध त्मने नमः ।

जिस सिद्ध आत्मा के द्वारा आत्मा आत्म रूप से और पर स्वरूप से जाना गया है उस अविनाशो अनन्त ज्ञान स्वरूप सिद्ध आत्मा को नमस्कार हो ।

श्री अमृत चन्द्र आचार्य सिद्ध के स्वरूप को इस प्रकार निषद्ध करते हैं —

नित्यमपि निरपलेप स्वरूपसमवस्थितो निरुपघात ।

गगनमिव परमपुरुष परमपदे स्फुरति विशदतम ॥२२३॥

पृतपृत्य परमपदे परमात्मा सकलविषय विषयात्मा ।

परमानन्दनिमग्नो ज्ञानमयो न दति सदैव २२४

सिद्ध भगवान आकाश की तरह सदा ही कर्म रूप रज के लैप से रहित हैं । स्वरूप में भले प्रकार स्थित रहते हैं । उपघात रहित हैं नाश रहित हैं । परम पुरुष हैं (अर्थात् आत्मा की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हैं) । अत्यन्त निमग्न हैं (द्रव्य कर्म-भावकर्म-नोकर्म से सर्वथा रहित हैं) ऐसे सिद्ध भगवान परम पद में (मोक्ष अवस्था में) प्रकाशमान होते हैं ॥२२३॥ परम पद में (मोक्ष अवस्था में) परमात्मा (सिद्ध भगवान पृतपृत्य हैं सम्पूर्ण विषयों के (सद्योर्षों के) जानने वाले हैं । ज्ञानमय हैं । आत्मा के उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख में मग्न है (आत्मिक सुख भोगते हैं) — इस प्रकार वे सदा आनन्द रूप हैं-सुखमय हैं ।

स्वामी समन्त भद्र कथित सिद्धों का स्वरूप इस प्रकार है —

जमजराऽऽमयमणौ शोकैर्दुःखैर्भयैश्चपरिमुक्तम्
निर्बोध्य शुद्ध सुखं निश्चयसमिष्यते नित्यं १३१

रत्नकरड श्रावकाचार ॥

' निवाण (सिद्ध भगवान) जन्म (देहान्तर प्राप्ति), जरा (बुढ़ापा) रोग, मरण, (देहान्तर प्राप्ति के लिये वर्तमान देह का त्याग), शोक दुःख, भय और चकार या अपलक्षण से रागद्वेष, काम क्रोध आदि से रहित होते हैं। निवाण (सिद्ध भगवान) सदा स्थिर रहने वाले शुद्ध सुख स्वरूप हैं (सकल विभाव भाव के अभाव को लिये हुये चाहा रहित परम निराकुञ्जता मय स्वाधीनता सहजानन्द रूप हैं), उसे निश्रेयस (सिद्ध कहते हैं।

विद्यादशन शक्तिमाग्यप्रहादृष्टिशुद्धियुज
निरतिशया निरवधयो निश्रेयसभावमतिमुत्त
रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सिद्ध भगवान विद्या (केवलज्ञान) दशन (केवल दशन, शक्ति (अनन्तवाच) स्वास्थ स्वात्म-स्थिरता रूप परम औदामीय (वपक्षा), प्रहाद (अनन्त सुख), सृष्टि विषयों अनाकाक्षा), और शुद्धि (द्रव्य भाव आदि कर्ममल रहितता) इन गुणों से युक्त हैं। साथ ही निरतिशय हैं (विद्यादि गुणों में हीनाधिकता के मात्र से रहित हैं) और निरवधि हैं (नियत काल की मर्यादा से शून्य हुए सदा से अपने स्वरूप में स्थिर रहनेवाले हैं) वे (ऐसे सिद्ध जीव) निश्रेयस सुख में पूर्णतया निवास करते हैं।

काले कल्पगतेऽपि च गते शिवाना न विक्रियालक्ष्या
ख्यातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसभ्रात्करण पटु

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सैकड़ों कल्पकाल बीत जाने पर भी सिद्धों के विक्रियाँ नहीं दखी जाती हैं (उनका स्वरूप कभी भी विकार भाव अथवा वैभाषिक परिस्थिति को प्राप्त नहीं होता) और यदि

जिस सिद्ध आत्मा के द्वारा आत्मा आत्म रूप से और पर स्वरूप से जाना गया है उस अविनाशी अतन्त ज्ञान स्वरूप सिद्ध आत्मा को नमस्कार हो ।

श्री अमृत चंद्र आचार्य सिद्ध के स्वरूप को इस प्रकार निबद्ध करते हैं —

नित्यमपि निरुपलेप स्वरूपसमवस्थितो निरुपधात ।

गगतमिव परमपुरुष परमपदे स्फुरति विशदतम ॥२२३॥

शृतशृत्य परमपदे परमात्मा सकलविषय विषयात्मा ।

परमानन्दनिम्नो ज्ञानमयो न दति सदैव २२४

सिद्ध भगवान आकार की तरह सदा ही कर्म रूप रज के लेप से रहित हैं । स्वरूप में भले प्रकार स्थित रहते हैं । उपधात रहित हैं नाग रहित हैं) । परम पुरुष हैं (अर्थात् आ पा की उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त हैं) । अत्यन्त निम्न हैं (द्रव्य कर्म-भावकर्म-नोकर्म स सर्वथा रहित हैं) ऐसे सिद्ध भगवान परम पद में (मोक्ष अवस्था में) प्रकाशमान होते हैं ॥२२३॥ परम पद में (मोक्ष अवस्था में) परमात्मा (सिद्ध भगवान शृतशृत्य है सम्पूर्ण विषयों के (सर्वशेषों के) जानने वाले हैं । ज्ञानमय हैं । आत्मा के उत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुरम्य मग्न है (आत्मिक सुख भोगते हैं) — इस प्रकार वे सदा आनन्द रूप हैं-सुखमय हैं ।

स्वामी समन्त भद्र कथित सिद्धों का स्वरूप इस प्रकार है —

जमजराऽऽमयमरगौ गोकेतुं स्वैर्भयैश्चपरिमुक्तम्

निवाण शुद्ध सुखं निश्चयसमिष्यते नित्यं १३१

रत्नकरुण भाषकाचार ॥

निर्वाण सिद्ध भगवान्) जन्म (देहान्तर प्राप्ति), जरा (घुटापा) रोग, मरण, (देहान्तर प्राप्ति के लिये चतमान देह का त्याग), शोक दुःख, भय और चकार या उपलक्षण से रागद्वेष, काम क्रोध आदि से रहित होते हैं। निर्वाण (सिद्ध भगवान्) सदा स्थिर रहने वाले शुद्ध सुख स्वरूप हैं (सकल विभाव भाव के अभाव को लिये हुवे यावा रहित परम निराकुलता मय स्वाधीनता सहजानन्द रूप हैं), उसे नि श्रेयस (सिद्ध कहते हैं)।

विद्यादर्शन शक्तिस्वास्थ्यप्रहादतृप्तिशुद्धियुज
निरतिशया निरवधयो नि श्रेयसमावसन्तिसुख
रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सिद्ध भगवान् विद्या (केवलज्ञान) दर्शन (केवल दर्शन) शक्ति (अनन्तवीर्य) स्वास्थ्य स्वात्म-स्थिरता रूप परम औदासीन्य (उपेक्षा), प्रहाद (अनन्त सुख), तृप्ति (विषयों अनाकाक्षा), और शुद्धि (द्रव्य भाव आदि कर्ममल रहितता) इन गुणों से युक्त हैं। साथ ही निरतिशय हैं (विद्यादि गुणों में हीनाधिकता के भाव से रहित हैं) और निरवधि हैं (नियत काल की मर्यादा से शून्य हुए सदा से अपन स्वरूप में स्थिर रहनेवाले हैं) वे (ऐसे सिद्ध जीव) निश्रेयस सुख में पूर्णतया निवास करते हैं।

काले कल्पगतेऽपि च गते शिवाना न विक्रियालक्ष्या
व्यातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोकसम्भ्रात्करण पटु

रत्नकरण्ड श्रावकाचार

सैकड़ों कल्पकाल बीत जाने पर भी सिद्धों के विक्रिया नहीं देखी जाती है (उनका स्वरूप कभी भी विकार भाव अथवा वैभाषिक परिणति को प्राप्त नहीं होता) और यदि

त्रिलोक को सञ्जाति कारक (उभे एकदम उलट पलट कर देने वाला) कोई महान असाधारण उत्पात (गड़बड़) भी हो तो भी इनके विकार नहीं देखा जाता है (वे घराघर अपने स्वरूप में स्थिर बने रहते हैं) ।

नि श्रेयसमधिप नास्त्रेलोकयशिस्रामणिभिर्यदघते

निष्कट्टिकाकालिकाहविचामीकरभा सुरामान

जो सिद्ध नि श्रेयस को [निर्वाण की-मातृ की] प्राप्त होते हैं वे कीट और कालिमा से रहित छविवाले सुवर्ण के समान देदीप्यमान आत्मा होते हुये तीन लोक के चूडामणि जैसी गोभा को धारण करते हैं । भाचार्य-जिस प्रकार खान के भीतर सुवर्ण पाषाण में स्थित सुवर्ण कीट और कालिमा से युक्त हुवा अपने स्वरूप को खोप, हुआ निस्तेज बना रहता है । जब अग्नि आदि के प्रयोग द्वारा उसका वह सारा मल छूट जाता है तब वह शुद्ध होकर देदीप्यमान हो उठता है । वही प्रकार ससार में स्थित यह जीवात्मा भी द्रव्य कर्म, भाव कर्म और नोकर्म के मेल से मलिन हुआ अपने स्वरूप को खोप निस्तेज बना रहता है । जब रत्नत्रय की अग्नि में उसका वह सब कर्ममल जलकर अलग हो जाता है तब वह भी अपने स्वरूप का पूरा लाभ कर देदीप्यमान हो उठता है । इतना ही नहीं धरिक त्रिलोक्य चूडामणि की शोभा को धारण करता है अर्थात् सर्वात्कृष्ट पद को प्राप्त करता है ।

श्री अमित गति आचार्य सिद्ध के स्वरूप को इस प्रकार वर्णन करते हैं —

यै कर्मपाष्टकं प्लुत्वा विशुद्धध्यानतेजसा ।

प्राप्तमष्टगुणैश्वर्यमात्मनीनमनव्ययम् ॥

क्षुधातृषाभ्रमस्वेदनिद्रातोपाथभावंत ।
 अन्नपानारानधानशयना भ्रणादिभि ।
 क्षुरादिनोदनैर्येषा नास्ति ज्ञातु प्रयोजनम् ।
 सिद्धे हि वाञ्छिते कार्ये कारणावेपथ्यं वृथा
 कमध्यपायतो येषा न पुनर्जन्म जायते ।
 विलय हि गतं बोधिं कुत सपद्यतेऽदुरे ।
 रागद्वेषादयो दोषा येषा सन्ति न कर्मजा ।
 निमित्तरहितं क्वापि न नैमित्तं विलोक्यते ।
 न निवृत्तिर्ममा मुक्त्वा पुनरायाति ससन्निम्
 शमद् हि परे हित्वा दुःखदं कं प्रपद्यते ॥
 सुखस्य प्राप्यते येषा न प्रमाणे कदाचन ।
 आकाशस्यैव नित्यस्य निमलस्य गरीयस ।
 पश्यन्ति ये सुखाभूता लोकामश्लरस्थिता
 लोकं कमभ्रदुरो न नाट्यमानमनारतम् ॥
 येषा स्मरणमात्रेण पुंसा पाप पलायते ।
 ते पूज्या न क्वयं सिद्धा मनोवाक्कायकमभि
 अमितगतिश्चावकाचारः ।

जि-होने निमल ध्यान अग्नि द्वारा थाठ कर्मा को
 जलाकर आत्मा का हित और अविनाशी ऐसा सम्यक्त्व
 आदि आठ गुणों-रूप ऐश्वर्य पाया है । और क्षुधा, तृषा,
 भ्रम, पसेव, निद्रा, इष-इत्यादि के अभाव से क्षुधादि-के
 दूर करने वाले जो अन्न पान आसन स्थान, सोना,
 आभूषण इत्यादिको से कदाचिद् को प्रयोजन नहीं, क्योंकि
 वाञ्छित कार्य की सिद्धि भवै पश्चात् कारण का ढूढना वृथा
 है । भावार्थ—लोक में भूख आदि की पीडा होय है तब
 अनादिक हरिण है और सिद्धं भगवान के भूख आदि दोष

ही रहे नहीं तब अन्नादिकों को टेरना किस लिए वे तै
 सहज क्षानानन्द म भगन हैं। और जिनके कर्मा के अभाव
 से फिर जन्म नहीं होता है क्योंकि बीज के नाश होने
 पर अकुर कहा से हाय, अपितु नहीं होय। भावार्थ-जन्म
 होने का कारण कर्म है तो उनके आठ कर्मावा अभाव
 भया तब जन्म कैसे होय। और कम जनित राग द्वेषादि
 दोष जिनके नहीं हैं क्योंकि निमित्त के अभाव म नैमित्तिक
 भाव कही भी नहीं देखे जाते हैं। भावार्थ -माहादि कर्म
 निमित्तसे नैमित्तिक राग आदि होते हैं। अब सिद्धों के
 मोहादि कर्म निमित्त रहा नहीं नैमित्तिक रागादि, किसने
 द्वारा होय अथाव न होय। और ये सिद्ध भगवान मोक्ष
 अवस्था को छोड़कर फेर सत्तार में नहीं आते हैं। क्योंकि
 सुखदायक स्थान को छोड़कर दुख दायक स्थान को कौन
 प्राप्त होय? अथाव कोई भी न होय। और जिनका आकाश
 की तरह नित्य निर्मल महान् अतन्त सुख प्रमाण (हृद-नाप) नहीं
 पाया जाता है। और जो सुख रूप, लोक अपशिखर पर
 बैठे हुए, कर्म रूप नटके द्वारा निरंतर नचाया जो लोक
 उसको देखते हैं। भावार्थ कर्मा कर जीरों की नाना
 अवस्था होती है न्नको देखते हैं परंतु रागादिक के अभाव
 से आप सुख रूप तिष्ठते हैं। और जिनके स्मरण मात्र से
 पुण्यों का पाप भाग जाता है। वे सिद्ध भगवान मन
 वचन काय की क्रिया द्वारा कैसे पूजने योग्य नहीं अपितु
 पूजने ही योग्य हैं।

लेख का सार

चौथ पाचवे छठ सातवें गुणस्थान के श्रानि जीव
 उपरोक्त पंच परनष्टी के स्वरूप को नित्य विचारा करते

है। भाला फेरा करते हैं, तथा शुभ ध्यान में मनको ध्या करते हैं जिसको धर्मध्यान था, सामायिक मठ शकत है य ऐसा क्यों करते हैं ? इसका उत्तर यह है कि भेद विज्ञान के द्वारा वे ये जान चुके हैं कि मैं मात्र मनुष्यादि पर्याय रूप नहीं हूँ किन्तु नायक, द्रव्य का हूँ। और शायक द्रव्य का महान ज्ञान, आचरण करनेवालों को भी ये पर्यायें (दर्शाएँ) प्रगट होती हैं। सन्निध्य सातवें पुण स्थान के दृढ अवलम्बन से अगले अगले गुरुध्यान, प्रगट होते हैं। यस यही आत्म विकास का मार्ग है। इसकी आगम प्रमाण ये गाथा श्री कुदकुन्द आशाय ने अपनी चारह भावना तथा मोक्षपाटुद प्रथम निर्मित है —

अरुहा सिद्धायरिहा नवमाया साहृ पवशाकष्टी ।
 ते विद्व चिट्टिदि यदि तथा अज्ञानाय ॥१॥
 कुदकुन्द मोक्षपाटुद तथा साधु शर भावना ।

अर्थ—अरिहन्त सिद्ध, चरित, नाशाय और साधु य पाच परमेष्ठी कहलाते हैं। य सब ज्ञाना की पर्याय है। इसलिये आत्मा ही मेरा हूँ।

अपराजित मन्त्र और अज्ञानमय मठ है। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य नाशयानु इन पाच लक्षणों का स्वरूप बनाया गया है। अज्ञान चार बाधों से रहित जीवन मुक्त-आत्म के दृष्टिकोण से गासक मुक्तात्मा को, आचार्य साधु का नाम है। अज्ञान नष्ट विज्ञान और साधु आत्म साधन है। अज्ञान सयमी

एगो अरिहताण एगो सिद्धाण एगो आइरियाण ।

एगो उवज्जायाण एगो लोए सव्वमाहुरे ॥१॥

अरिहन्ता को नमस्कार हो, सिद्धों को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, व्याख्यायों को नमस्कार हो, लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो। भावार्थ—साधुओं के साथ जो लोके सब शब्द जोड़े दे वह व्याकरण के नियमानुसार अन्त्य दीपक हाने के कारण प्रत्येक वाक्य के साथ लगाना चाहिये जैसे लोकें मेंजितन अरिहत हैं उन सब को मरा नमस्कार हो। ऐसा ही धर्म आगे भी करना चाहिये।

मन्त्र का माहारम्य

एसा पंच एगोयारो सव्वपावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसि पटम हवइ मंगलं ॥२॥

यह पंच नमस्कार मन्त्र सार पापों का नाश करने वाला है और सब मंगला में पहला मंगल है।

मंगल पाठ

चत्तारि मंगलं, अरिहता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, वैशलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ।

चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, पवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि वैशलिपण्णत्त धम्मं सरणं पव्वज्जामि । चार मंगल हैं—अरिहत

मंगल है, सिद्ध मंगल है, साधु मंगल है और क्वलि (लीयडूर) प्रणीत घम मंगल है ।

चार लोक में उत्तम है - अरिहन्त - उत्तम है, सिद्ध उत्तम है, साधु उत्तम है और क्वली प्रणीत (तीर्थकर कथित) घम उत्तम है ।

ये चार क शरण जाता हैं । अरिहन्तों के शरण जाता हैं । सिद्धों क शरण जाता हैं । साधुओं के शरण जाता हैं । क्वलि-प्रणीत घम के शरण जाता हैं ।

मावार्थ-उपरोक्त मंगल पाठ में अरिहन्त और सिद्ध का स्वरूप तो उपर लिख ही दिया है । साधु का वाच्य महा आचार्य ज्ञाध्याय साधु है । मुनि त्रय, स्वरूप कहा घम का वाच्य है मोक्षमार्ग-रत्नत्रय मन्मददर्शन गातपरित्र इसके दो क्वलर भेद हैं निदग्ध और द्यवहार ।



अ० भा० दि० जन शास्त्र परिषद्
का

कार्य विवरण एक दृष्टि में

- १ समाज द्वारा विद्वानों की भाव पर विद्वानों को सेवा पत्रों आदि पर ।
- २ मई १९२५ न मार्च १८ तक ३७ पुस्तकें छापकर बाँटी (समस्त भारत में)
- ३ पोस्टर आदि समय समय पर निकाले ।
- ४ हस्तिनापुर पर प्रचार कार्य २ बार भगाया ।
- ५ गिरजा सस्थाओं को उनके अनुसूच पुस्तक भेजी ।
- ६ स्वाध्याय का प्रचार बढ़ाया ।
- ७ शास्त्री परिषद् के एक समाधान विभाग ने नये पत्र को बढ़ाने से रोकने और उच्च समाधान जनता के सामने उपस्थित किया ।
- ८ श्री सम्ने- गिरार व मक्ली पार्श्वनाथ व भठरिन पार्श्वनाथ जी के कस में सहयोग किया ।
- ९ मरिना पत्र द्वारा मुनि निगा करने पर उसका का उत्तर दिया गया ।
- १० रेडियो पर जन मंत्रों का प्रचार प्रारम्भ कराया (प्राण स्मरण) ।
- ११ पूज्य गुरु गोपाल दास जन्म शताब्दि में सहयोग की प्रेरणा और धार्मिक सहयोग दिलवाया ।
- १२ अथवा वेतगुन पर लगने वाले ३० पक्षे टकस का विरोध तथा सेहों का विशाल किरावा व २५ वैसे पहाड पर चढ़ने का विरोध किया ।
- १३ समय समय पर समाज को विद्यय जानकारी धार्मिक कार्यों की देती रही ।
- १४ विद्वानों की मानों को पूरा कराया गया ।
- १५ मुनागा व भवरा वेत गुल में नमितिक अधिवेशन किये गये ।
- १६ विद्वानों क किये उच्च अध्ययन का प्रवर्ध कराया व नोटिसियाँ दियई ।

